**Purva Mimaansa**
*A Multi-discipinary Bi-annual Research Journal*
*(Double Blind Peer Reviewed)*

*Vol. 9 No. 1-2, March-Sep. 2018*
*ISSN : 0976-0237*
*UGC Approved Journal No. 40903*

# मानवाधिकार – 'धर्मशास्त्र एवं नीतिशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में'

**सलोनी**

## संक्षेपिका

मानवाधिकारों पर दृष्टिपात करने पर हमें इनकी पृष्ठभूमि में धर्मशास्त्र एवं नीतिशास्त्र का प्रभाव विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। धर्मशास्त्र तथा नीतिशास्त्र शासक को न्याय करते समय अपने पराये का भेदभाव न करने का निर्देश देते हैं। इन शास्त्रों के अनुसार दण्ड. व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए, जिसमें दण्डनीय व्यक्ति को छोड़ा न जाए एवं निर्दोष दण्डित न हो। समानता के भाव को परिलक्षित करते हुए ये दोनों शास्त्र प्रथम तीन वर्णो के साथ चतुर्थ वर्ण को भी धर्माधिकारी स्वीकार करते हैं। जातिगत भेदभाव को मिटाते हुए नीतिशास्त्र का कथन है कि इस संसार में कोई भी जाति के कारण श्रेष्ठता अथवा निकृष्टता को प्राप्त नहीं करता। गुण एवं कर्म से ही ये जातिगत भेद हैं। शिक्षा के अधिकार के परिप्रेक्ष्य में नीतिशास्त्र शासक को निर्देश देता है कि वह कला एवं विद्या की उन्नति हेतु सदैव प्रयत्नशील रहे। अतः मानवाधिकारों का जो प्रारूप हमें आज दृष्टिगोचर हो रहा है, संस्कृत साहित्य के धर्मशास्त्रीय एवं नीतिशास्त्रीय ग्रन्थों में इनका यही स्वरूप अति प्राचीन काल से चला आ रहा है। इसलिए 'संस्कृत साहित्य को मानवाधिकारों की पृष्ठभूमि' स्वीकार करने में कोई भी आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

संस्कृत भाषा विश्व की प्राचीनतम भाषा के रूप में विश्व विख्यात है। इस भाषा के साहित्य की समृद्धि की बात करें तो शायद ही कोई ऐसा विषय होगा, जिसका प्रतिपादन इस साहित्य में निबद्ध न हो। आज मानवीय अधिकारों का हनन तथा इनके संरक्षण हेतु राष्ट्रीय प्रयत्नों की चर्चा प्रत्येक मानवीय समाज का विषय है। प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रति सजग होते हुए उन्हें प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील है।

मानवाधिकारों पर दृष्टिपात करने पर हमें इनकी पृष्ठभूमि में संस्कृत साहित्य का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है एवं विशेष रूप से धर्मशास्त्र एवं नीतिशास्त्र का।

मानवाधिकार अनुसार प्रत्येक व्यक्ति जिस पर दण्डनीय अपराध का आरोप किया गया हो, तब तक निरपराध माना जायेगा, जब तक कानून के द्वारा उसे अपराधी सिद्ध न कर दिया जाए। नीतिशास्त्र का भी मानना है कि केवल अपराधी व्यक्ति को अपराध सिद्ध हो जाने की स्थिति में ही दण्डित किया जाना चाहिए ..

आप्तदोषं कर्म कारयेत्..... ।[1]

धर्मशास्त्र तथा नीतिशास्त्रानुसार दण्ड–व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए, जिसमें

**असिस्टैंट प्रोगेसर, संस्कृत विभाग, गुरू नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर।**

*Vol. 9 No. 1-2, March-Sep. 2018*
*ISSN : 0976-0237*
*UGC Approved Journal No. 40903*

दण्डनीय व्यक्ति को छोड़ा न जाए एवं निर्दोष दण्डित न हो ..

अदण्ड्यान्दण्डयन्राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन् ।
अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति ।।[2]
दण्ड्यस्याद्दण्डनान्नित्यमदण्ड्यस्य च दण्डनात् ।
अतिदण्डाच्च गुणिभिस्त्यज्यते पातकी भवेत् ।।[3]

'कानून (न्याय प्रणाली) की दृष्टि में सभी लोग किसी भी भेदभाव के बिना एक समान है" –– यह मानवाधिकार है। धर्मशास्त्र तथा नीतिशास्त्र भी शासक को न्याय करते समय अपने पराये का भेदभाव न करने का निर्देश देते हैं। धर्मशास्त्रानुसार राजा का पिता, उसका आचार्य, मित्र, स्त्री, पुत्र एवं पुरोहित भी यदि धर्मनिष्ठ न हों तो ये सभी शासक के लिए पूजनीय अथवा निकट सम्बन्धी होते हुए भी दण्डनीय हैं ..

पिता ऽऽ चार्यः सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः ।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति ।।[4]
अपि भ्राता सुतोऽघ्र्यो वा श्वशुरो मातुलोऽपि वा ।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति धर्माद्विचलितः स्वकात् ।।[5]

राजा मित्रभाव अथवा धन के लोभ से कदापि अपराधी व्यक्ति को न छोड़े –

न मित्रकारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात् ।
समुत्सृजेत्साहसिकान्सर्वभूतभयावहान् ।।[6]

नीतिशास्त्र का भी कथन है कि राजा आज्ञाभङ्ग करने वाले अपने पुत्रों को भी क्षमा न करे .

आज्ञाभङ्गकरान् राजा न क्षमेत् स्वसुतानपि ।..[7]

मानवाधिकारों में प्रत्येक व्यक्ति के लिए जन्मजात स्वतन्त्रता एवं समानता की चर्चा करते हुए परस्पर भ्रातृ–भाव से रहने की बात की गयी है। धर्मशास्त्र में पराधीनता को दुःख का तथा स्वाधीनता को सुख का कारण स्वीकार किया गया है ..

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ।।[8]

धर्मशास्त्रीय तथा नीतिशास्त्रीय ग्रन्थों में चातुर्वर्ण्य की चर्चा उपलब्ध है। नीतिशास्त्रानुसार एवं गीता के अनुसार जातियों (वर्णों) का विभाजन कर्मों पर आधारित है..

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ।
चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः ।।[9]
चतुर्धा भेदिता जातिब्राह्माणा कर्मभिः पुरा ।...[10]
चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टा गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ।।[11]

समानता के भाव को परिलक्षित करते हुए धर्मशास्त्र तथा नीतिशास्त्र प्रथम तीन वर्णों के साथ चतुर्थ वर्ण को भी धर्माधिकारी स्वीकार करते हैं ..

शूद्रो वर्णश्चतुर्थोऽपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति ।...[12]

*Vol. 9 No. 1-2, March-Sep. 2018*
*ISSN : 0976-0237*
*UGC Approved Journal No. 40903*

यजुर्वेद में भी अग्नि देवता से सभी वर्णों में तेजस्विता स्थापन की प्रार्थना भी समानता के भाव को ही प्रकट करती है ..

रूचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रूचं राजसु नस्कृधि।
रूचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रूचा रूचम्।।[13]

अपने पराये की भावना का परित्याग कर सम्पूर्ण विश्व को परिवार मानना नीतिशास्त्रीय ग्रन्थों में भ्रातृभाव की भावना को अभिव्यक्त कर रहा है ..

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।[14]

मानवाधिकारों में जाति, वर्ण, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीति, किसी देश, समाज विशेष में जन्म, सम्पत्ति अथवा किसी प्रकार की अन्य मर्यादा के कारण किसी भी प्रकार के भेदभाव न करने की बात वर्णित है। जातिगत भेदभाव को मिटाते हुए महर्षि शुक्राचार्य का कथन है कि इस संसार में कोई भी जाति के कारण श्रेष्ठता अथवा निकृष्टता को प्राप्त नहीं करता। इस संसार में जन्म से कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा म्लेच्छ नही होता। गुण एवं कर्म से ही ये जातिगत भेद हैं ..

न जात्या ब्राह्मणश्चात्र क्षत्रियो वैश्य एव न।
न शूद्रो न च वै म्लेच्छो भेदिता गुणकर्मभिः।।[15]

अपने गुणों, कर्मो एवं आचरण से मनुष्य जितना पूजनीय होता है। उतना जाति अथवा कुल से नहीं, क्योंकि श्रेष्ठता जाति अथवा कुल से प्राप्त नहीं होती..

कर्म्मशीलगुणाः पूज्यास्तथा जातिकुले न हि।
न जात्या न कुलेनैव श्रेष्ठत्वं प्रतिपद्यते।।[16]
जातिमात्रेण किं कश्चिद्धन्यते पूज्यते क्वचित्।।[17]

महाकवि भवभूति ने भी जातिगत भेदभाव से विपरीत गुणों को ही पूजा (आदर) का स्थान माना है। उनके कथनानुसार गुणियों में चिह्न अथवा अवस्था की आदर हेतु अपेक्षा नहीं होती..

गुणाः पूजास्थानं गणिषु न च लिंङ्ग न च वयं।।[18]

किसी को भी शारीरिक यातना न देने तथा न ही किसी के प्रति निर्दयी, अमानुषिक अथवा अपमानजनक व्यवहार करने का उल्लेख मानवाधिकारों में किया गया है।

धर्मशास्त्र तथा नीतिशास्त्र दोनो में हीन अंग वाले, अधिक अंग वाले, मूर्ख, वयोवृद्ध, कुरूप, निर्धन व निम्नजाति वालों की निन्दा अथवा उपहास न करने की बात वर्णित है ..

हीनाङ्गानतिरिक्तङ्गान्विद्याहीनान्वयाऽधिकान्।
रूपद्रव्यविहीनां जातिहीनांश्च नाक्षिपेत्।।[19]
... दीनान्धपंगुबधिरा नोपहास्याः कदाचन।।[20]

शारीरिक यातना के विपरीत नीतिशास्त्र कठोर दण्ड देने के विरोधी हैं। वहां अपराधानुसार ही दण्ड देने की बात वर्णित है ..

दण्डपारूष्यात् सर्वजनद्वेष्यो भवति।[21]
तीक्ष्णदण्डो हि भूतानामुद्वेजनीयः।... यथार्हदण्डः पूज्यः।।[22]
अपराधानरूपी दण्डः।।[23]

*Vol. 9 No. 1-2, March-Sep. 2018*
*ISSN : 0976-0237*
*UGC Approved Journal No. 40903*

प्रजा नष्टा न हि भवेत् तथा दण्डविधायकः।
नातिक्रूरो नातिमृदुः साहसाधिपतिश्च सः।।[24]

परिवार को समाज की स्वाभाविक व मूलभूत इकाई मानते हुए इसे समाज एवं राष्ट्र द्वारा संरक्षण प्राप्त करने का अधिकार भी मानवाधिकारों में वर्णित है। इस सन्दर्भ में नीतिशास्त्र ने शासक का यह कर्त्तव्य निर्धारित किया है कि यदि उसके राष्ट्र में कोई व्यक्ति अपने माता–पिता, पत्नी का परित्याग कर मनमाना आचरण करता है तो शासक ऐसे व्यक्ति को दण्डित करके उससे परिश्रम करवाये तथा उससे प्राप्त धन से उसके पारिवारिक सदस्यों को संरक्षण प्रदान करे.

मातरं पितरं भार्य्यां यः सन्त्यज्य विवर्त्तते।
निगडैर्बन्धयित्वा तं योजयेन्मार्गसंस्कृतौ।
तद्भृत्यर्द्धं तु सन्दद्यात् तेभ्यो राजा प्रयत्नतः।।[25]

पितापुत्रायोर्दम्पत्योभ्रातृभगिन्योर्मातुलभागिनेययोः शिष्याचार्ययोर्वा परस्परमपतितं त्यजतः.. .. पूर्वः साहसदण्डः।।[26]

धर्मशास्त्र ने पिता, माता, गुरूजन, पत्नी, शरणागत, दीन, अभ्यागत, सम्बन्धी, बन्धुजन, कमजोर, अनाथ, आश्रमागत एवं अन्य धनहीन लोगों की गणना पोष्यवर्ग के अन्तर्गत करते हुए इसके भरण–पोषण से स्वर्ग–प्राप्ति तथा इनके अनादर व इनको कष्ट देने से नरक प्राप्ति का भय दिखाकर इनका यत्नपूर्वक पालन–पोषण करने का निर्देश प्रदान किया है .

पिता माता गुरूर्भार्य्या प्रजा दीनाः समाश्रिताः।
अभ्यागतोऽतिथिश्चान्यः पोष्यवर्ग उदाहृतः।।
ज्ञातिर्बन्धुजनः क्षीणस्तथानाथः समाश्रितः।
अन्येऽयधनयुक्ताश्च पोष्यवर्ग उदाहृतः।।
भरणं पोष्यवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसाधनम्।
नरकं पीडने चास्य तस्माद्यत्नेन तं भरेत्।।
सार्वभौतिकमन्नाद्यं कर्तव्यन्तु विशेषतः।...[27]

मानवीय अधिकारों में शिक्षा का अधिकार अत्यन्त महत्वपूर्ण है। नीतिशास्त्रानुसार शासक को चाहिए कि वह कला एवं विद्या की उन्नति हेतु सदैव प्रयत्नशील रहे। इसके लिए वह छात्रावृत्ति प्रदान कर लोगों को प्रत्येक विद्या एवं कला की शिक्षा समाप्ति के पश्चात/ उनकी योग्यता के अनुरूप कार्यो में उनको नियुक्त करे एवं विद्या व कला के क्षत्र में दक्ष लोगों को प्रतिवर्ष पुरस्कार आदि प्रदान कर सम्मानित करे ..

विद्याधनं श्रेष्ठतरं तन्मूलमितरद्धनम्।
दानेन वर्द्धते नित्यं न भाराय न नीयते।।[28]
विद्याकलानां वृद्धिः स्यात्तथा कुर्यान्नृपःसदा।...[29]
... सर्वविद्याकलाभ्यासे शिक्षयेद् भृतिपोषितान्।।[30]
समाप्तविद्यं सन्दृष्ट्वा तत्कार्य्ये तं नियोजयेत्।
विद्याकलात्तमान् दृष्ट्वा वत्सरे पूजयेच्च तान्।।[31]

ऐसा करने से शिक्षा के अधिकार पर कोई आंच नहीं आयेगी तथा समस्त राष्ट्र साक्षर होगा।

इसी प्रकार अन्य भी जिन मानवाधिकारों का जो प्रारूप हमें दृष्टिगोचर हो रहा है,

*Vol. 9 No. 1-2, March-Sep. 2018*
*ISSN : 0976-0237*
*UGC Approved Journal No. 40903*

संस्कृत साहित्य के धर्मशास्त्रीय एवं नीतिशास्त्रीय ग्रन्थों में इनका यही स्वरूप अति प्राचीन काल से चला आ रहा है। इसलिये 'संस्कृत साहित्य को मानवाधिकारों की पृष्ठभूमि' स्वीकार करने में कोई भी आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

## सन्दर्भ

1. अर्थशास्त्र, 4.83.8, पृष्ठ संख्या – 377.
2. मनुस्मृति, 8.128
3. शुक्रनीति, 4.1.54
4. मनुस्मृति, 8.335
5. याज्ञवल्क्यस्मृति,1.358
6. याज्ञवल्क्यस्मृति, 8.347
7. हितोपदेश, 2.107
8. मनुस्मृति, 4.160
9. मनुस्मृति, 10.4
10. शुक्रनीति, 4.3.12
11. गीता, 4.13
12. व्यासस्मृति, 1.6, शुक्रनीति, 4.4.32
13. यजुर्वेद, 18.48
14. हितोपदेश, 1.70
15. शुक्रनीति, 1.38
16. शुक्रनीति, 2.55
17. हितोपदेश, 1.58
18. उत्तररामचरितम् , 4.11
19. मनुस्मृति, 4.141
20. शुक्रनीति, 3.114
21. चाणक्यसूत्र, 76
22. अर्थशास्त्र, 1.1.3, पृ॰ स़॰ 12
23. चाणक्यसूत्र, 328
24. शुक्रनीति, 2.170
25. शुक्रनीति, 4.1.115
26. अर्थशास्त्र, 3.74.75.20, पृ सृं 341
27. दक्षस्मृति, 2.29.32
28. शुद्रनीति, 3.178
29. वही,1.369
23. वही, 1.367
31. वही, 1.368